

भातपीठ लोकोदय प्रथमाला
हिंदी प्रयाण ६१



सात गीत-वर्ष



धर्मवीर भारती

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला
सम्पादक श्रीर नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रथम संस्करण
१९५६
मूल्य साढे तीन रुपये

प्रकाशक
मन्त्रा, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी
मुद्रक
बालू लाल जैन फागुल
संमति मुद्रणालय, वाराणसी

सात गीत-वर्ष रचनाकाल ५१ से ५८

अनुक्रम

प्रमथ्यु गाथा	१६
नया रस	२६
नवम्बर की दोपहर	३१
फागुन के दिन की एक अनुभूति	३३
उत्तर नहीं हूँ	३५
बिज्ञासा	३७
सक्रान्ति	४०
पराजित पीढी का गीत	४२
कौन चरण ?	४५
इनका अर्थ	४६
गैरिक बाणी	५२
केवल तनका रिश्ता	५४

मेघ दुपहरी	५६
प्लेटफार्म	५८
इतने दिन बाद	५९
ऊँचे की शाम	६१
धूलभरी आँधों का गीत	६३
आँगन	६५
अवशिष्ट	६७
उपलब्ध	६९
स्वयम् को दुहरायेगा ?	७१
साजुत आइने	७३
रात आँधियारी हवा तेज़	७५
आस्था	७८
निमाण-योजना	८०
गुलाम बनानेवाले	८४
एक वाक्य	८६
वाणभट्ट	८७
बृहनला	८९
दूटा पहिया	९२
एक श्रवतार में	९४
दान प्रभु के नाम	९६
अर्द्धस्वप्न का नृत्य	९८
बातें	१०१
सौँफ के बादल	१०३
यह दलता दिन	१०५
धुँधली नदी में	१०७
शाम दो मनस्थितियों	१०९
अधेरे का फूल	११२
यादों का चदन	११४
आँगन बेली	११६
टीठ चाँदनी	११८

दिन ढले की बारिश	१२०
शाम एक थकी लडकी	१२२
अन्तहीन यात्रा	१२४
एक छवि	१२६
चेत का एक दिन	१२८
फूल, सागर, सीपी	१३०
दूसरे दिन सुबह	१३२
अँजुरी भर धूप	१३४
घाटी का बादल	१३६

क्षण,

काव्य सृजनका,

सच है कि सबसे महत्त्वपूर्ण विन्दु है—लेकिन शायद यही है जिसने बारेमें स्वयं रचनाकार भी फटिनतासे ही कुछ निश्चयपूर्वक कह सकता है। वैसे तो मन पर उस क्षणका स्वाद बहुत तात्का छूट जाता है लेकिन जब उसे प्रगट करनेकी चेष्टा करा तो लगता है कि यह तो न मालूम कितने जाने अनजाने स्वादोंका सम्मिलित स्वाद है जिसके सवेदनका ठीक ठीक यत्न कर पाना असम्भव सा ही है। एक हिचक मनमें और होती है कि जो कुछ कहने सुनने लायक था वह तो एक-एक बूँद काव्यकृतिमें उँदेल कर वह क्षण रीत गया और अपनी याददाश्तमें उसे फिरसे सम्पुजित करनेकी चेष्टा भी करें तो ऐसा न हो कि उसका आस पास, परिस्थिति, समय, स्थान और आसग तो वापस खोजे जा सकें—मगर उसका मर्म, उसका सारतत्त्व छूट ही जाय।

कई बार समकालीन लेखनमें भी रचना प्रक्रियाने ऐसे साङ्गोपाङ्ग विवरण देखनेको मिले हैं, पर उन्हें देखकर बहुधा यही भावना हुई है कि वे अजायबघरमें रखे हुए जलपाखी ह, खालमडे मृतरूप जिनमें रूप-रंग, आकार, पजे, पर सब जुटा दिये गये हैं किन्तु गायब है तो केवल उसकी उडान—पृथिवीकी रातको चन्द्रमा और समुद्रके बीच उसकी आकुल आवेशभरी उडान, और गायब है उसकी अजीब-सी चीत्कार-भय, वेदना, उल्लास, उमत्त वासना, विजय और आशकासे भरी हुई। अजायबघरका पाखी दूसरे दिन मुंह बालू पर छूट गया उसका अवशेष है—जल पाखी नहीं।

एक ओर यह दुस्तर कार्य और दूसरी ओर यह मेरा अजीब सा मन जिसे उन्पुन करो पूर्यकी ओर तो भागेगा धुर पश्चिमकी ओर। नियोजित करो अपने काव्य-सृजनके क्षणको पुन स्मरण करनेको, तो अदमदा कर उसे वे क्षण

यात्र आयेँगे जो मन पर जाने कय अरुनी छाप छाउ गये है
लेकिन काय-खुजानसे उनका दूरका लगान भी नहीं है।
विश्वपत्नी एक पहाड़ी नदीमें अचरेके रागान, अपो पुराने
घरके उलटे पनस्तर वाली एक दीवार पर कल्पित घेडोल
गस्तें, कोणार्क रास्तेम परदरे लाल उच्चत नोकी पून,
बीमार पत्नीका मुर हाया चेहरा, तीरते हुए मछलियाँ भुएद
श्रीर यह, श्रीर वह, श्रीर तमाम सत्र, लेकिन सत्र परस्तर
असम्भद श्रीर रचनाये क्षणमे जिका कोइ दूरका खा भी
नहीं जुडता।

०

लेकिन इन सर्नाके नीचे रह-रहकर मन एक स्मृतिचित्र
पर नर-नार जा पिकता है, बहुत पुगना, लेकिन अर भी
निलकुत ताजा

कच्ची नौदम मुझे जगा थिया गया दे श्रीर ले जाया
जा रहा है घनघोर अचरेके गाँवने नहर उरद खानड रास्ते
परसे, चेत, टीगा, पोखरने बीचसे, मीलों दूर, नहर
वाली अमराइमें जहाँ देवनातिनका मठिर है। दीवालीकी
छुटियाँ मनाने नहनन घर आया हूँ, इस छाटे से धूल
भरे उदास दूटे फूटे पुगने क्रमेमें जहाँ सूरज डबते हा
रात हो जाती है, सटक वारान हो जाता है। मगर
आज रातभर अचरेमें पगधनियो सुनाइ टगी क्योंकि
आज प्राधारात देवीकी पूजा हाती है आर पीरने चबू
तरे पर चाटर चढती है—उन पगधनियामें एक नहीं
किशार पगधनि मेरी भी है लेकिन डगमग क्याकि मेरी
अँगनाम अर भी नीट है श्रीर अधनीन चल रहा हूँ श्रीर
घरवाले मेरा हाथ पकडे है। प्रच्छी तर-यात्र हूँ मुझे वे
नण। अधनीनमें मुझे सामने कुट्ट नहीं दीपता सिना टाच
से गिरा एक उजालेका गाल टुकडा जिसने पीछे म,
श्रीर स्थिर है वह उजालेका वृत्त श्रीर स्थिर हूँ म—
चल रहा है नेजल नह पगडबडा, ककड, पत्थर, मेड, रोत
परसे सरकती आती हुइ, उस उजले वृत्तमसे टेढे मेढे उल

साती हुई, मरे पाँजोने नाचे त्रिलुप्त शानी हुई। गड्डा हूँ
 म—स्थिर, नींद दृग्ग और अचेरेमें चल रही है सुशुभ्र,
 कुछ जानी कुछ अनजानी—अभा नम पातरकी सदा सुशुभ्र,
 अभी अचेरेमें सुपते उबलोसी, अभी कगी हुई कुट्टी की,
 अभी मनहुलसाका, अमा जगनी कयूतरोंके रावरग पया
 का मानों म स्थिर गड्डा हूँ और गस्ता और उसका
 परिपार्श्व अलसाता आता हुआ मुझसेसे गुजरता जाता है।

कम रास्ता खतम हुआ, कम अचेरा पट गया, कम
 अरुमात् शूयममे एक जगमग दृश्य प्रगट हा गया मेरे
 सामने—यह याद नहीं। सामने है मंदिर, चबूतरा, गैसके
 हण्डे, शटनाइयो, भाँक, हारमाणिम, कंगाली, अगर्
 बत्तियाँ, आते हुए लोग, जाते हुए लाग, पुकारते हुए
 लाग, बोलते हुए लाग।

अन जाग गया हूँ म, जी रहा हूँ, सजिय हूँ। सब
 चीजें अपनी जगह स्थिर हैं, यहाँ तक कि बेहद शोरवानी
 भीड़ भी केतलामें चलभलान जतकी तरह चञ्चल मगर
 अपना परिविमें स्थिर है। चल रहा हूँ केवल म। एक
 जगह गुमगुम गड्डा में आ रहा हूँ, जा रहा हूँ, इसमेंसे,
 उसमेंसे—इसने बगलसे, उसने पाससे नहरकी पुनियाके
 पास गुमगुम खडा म।

काफी देर हो चुकी है। घर वाले सुबह तक यहीं जाग
 रख करेंगे। मुश्किलमे दजाजत मिली है घर लौटनेकी
 आँखे। मैं मुग्ध—रोशनीका जगमगाता द्वीप पीछे मुड
 गया—सामने है अचेरेका विशाल समुद्र प्रथाइ दूर तक
 फैला हुआ।

दृश्यान्तर। लौट रहा हूँ जहाँमे आया था वहाँ। सन
 कुछ बही है पर इतना ही देरमें कुछ भी तो बही नहीं।
 कहीं ह वै जो मेरे साथ थे। कहीं है प्रकाशरुत्तने पीछे मेरी
 स्थिरता। हाथोंमें टाचकी गेशनी है लेकिन अथाइ अचेरेमें
 लुद, असहाय, अनिश्चयप्रस्त, धुँधली, सहमी हुई, पथने

हर रोड़ेसे टकरा कर टूटती हुई, हर झाड़ीमें उलझ कर तार-तार होती हुई

और पहली बार तो नहीं थे, इस बार कहाँमे आ गये ये कटे पेड़ोंने हूँठ, प्रेत, झाड़ियोंमें छिपी अज्ञाने भयभीत चमकती आदमखोर आँसू, पात्रोंके अन्धकार पर तीरती गूँगी छायाएँ और मेरा गला सूखने लगा, क्या पात्रोंमें से ताकत जाने सा लगी मैं नहीं जानता। और पहली बार, पहला बार मेरे उस विशोर मनको लगा कि मैं अथाह शून्यके समक्ष खड़ा हूँ। मृत्यु नहीं, आपदा नहीं,—शून्य।

पाछे मुड़ कर देखा मन्दिर और रोशनी और भौड़ भाड़ अँधेरेमें विलीन हो चुके थे। लगता था कि विशाल जलपान टूट गया और टूट गये लोग और अन्धर्म पुकारें भी तो कोई बचाने नहीं आयेगा।

और सामने देखा और याद करकेकी कोशिश की पुराना कदम और धीमी लालटेनमें बच्चोंका मुलाकर जागती हुई वहनका ममता भरा चेहरा—पर वह भी उस अँधेरेमें नहीं दीखा, नहीं दीखा। वह ऐसा भविष्य लगा जा बीत गया अन्ध कितना भी चलूँ वापस नहीं मिलेगा।

कितना अजीब अन्धकार—राह है, कदम हैं, घर है लेकिन कुछ भी नहीं। एक विराट अन्धकार, अन्धकार, अन्धकार, अन्धकार और उसने समझ मैं—निहत्था—अपने अतीत और भविष्यसे भी वंचित। जहाँ पहुँचा था वहाँसे चला हूँ, जहाँसे चला था वहाँ जा रहा हूँ पर जहाँ पहुँचा था वह हून चुका है और जहाँ जाना है वह पता नहीं अँधेरेके पार है भी या नहीं।

एक विराट अन्धकार, शून्य, अन्धकार



शायद यह यात्रा हम जीवन भर करते रहते हैं और कितनी बार, कितनी बार, यह अन्धकार, यह शून्य हमका जीने लगता है, और हम पाते हैं कि हमारा समस्त आस पास उजाला, भाड़भाड़, विज्ञान, दर्शन, अस्मात् अन्धकारमें लीन हो गया है। है, लेकिन नहीं है। अँधेरेमें है हम—अन्धकार, निहत्थे, असहाय ! या शायद हम भी

नहीं निर्र प्रगाढ अवतारमें गिरते हाथोंकी ग्राह, गोन
लेकिन फिर हम पाते हैं कि हम नच गये हैं । हाग तथा
ह कहना कठिन है । बाह्य निर्र इतना होता है कि यच
चालित गतिसे कर्म उठते जाते हैं । इन दासामें अर
क्या प्रथि हाग है हमका अनुमान करा कठिन है ।

शायद हाता मद है कि हमारे अतीत और भविष्य
का जगत् दोन अस्मात् निष्ठा पड जाते ह । नचम नच
जाते ह हम, वर्तमान क्षण परपर, और ताकि हम जाते
रह—समारको पुन उल्लन होना पडता है भयमें, याजना
मेंसे, शयमेंसे ।

या शायद समार यथावत् रता है नचन प्रगा
और भविष्यमें पूर्णत विच्छि न हाकर हम अपने अर कहीं
मृत हा जाते ह और नच क्षणमें फिर हम अतोना रगत
ह और फिर मरना नये सिरेम धारण करत ह ।

या शायद न मसार नष्ट हाता है न हम । नेना
हमारी पुराना जगत् चेचना अस्मात् विरुक्त शय पड
जाता है—अतीत और भविष्य प्रत, बाह्य और अन्तर
प्रति हमारे सार अथावधि स्थायित सम्प्रथ अर मात् दूड
जात ह और हम फिर अनितान्त शयमें उतरकर उा
सम्प्रथ सूचना नये स्तरपर जाडत है और वरने नच रचित
सम्प्रथके वर्तमानके आधार पर हम अपने अतीत और
भविष्यकी नित नूतन उपलब्धि करने ह ।

शायद

हाँ यह 'शायद' बहुत महत्त्वपूर्ण है । शायद इनमेंसे का
एक प्रक्रिया प्रथित होती है, या शायद सन हाती है, या शायद
काद नहीं होती । होता है कुछ और

शायद हम भा रहते ह और समार या । नष्ट कुछ
नहीं होता । जहाँसे हम चलते ह वह भा या जहाँ तक
हम पहुँचते हैं वह भी । हम जानाँ जो चुने हाते हैं,
अपनेमें धारण किये हुए हाते हैं लेकिन अस्मात् किमी एक
क्षणमें हम पाने ह कि यह सन है तो पर अस्मात् हमारे
निष् अर्थहीन हो गया है, अनिश्चित हो गया है । और हम

विराट शून्यमें अकेले छूते जा रहे हैं और हम अकेले छूना नहीं चाहते। जाना चाहते हैं और अस्तित्वमेंसे अस्तित्व पावने के लिए अभिव्यक्त करना चाहते हैं अपनेको, और प्रिना सत्कारके हम अयोग्य अभिव्यक्त कैसे करेंगे, अतः हम किसी एक स्तरपर मूल्य और अर्थ देते हैं हर चीज़को और हर चीज़के माध्यमसे अपनेको। पाये हुए और पाकर गये हुए सत्कारका किमी एक स्तरपर 'रचते' हैं। ऐसे स्तरपर जहाँ कुछ भी फिर कभी धुँधला और अर्थहीन न पड़े।

जीवनोंमें जिये हुए अनुभवाँ, सचेतना, पीडायाँ और सुखोंमें तथा कायमें रचे हुए पाडायाँ, सुखाँ और सचेतनावाले जीवनमें शायद यही सम्बन्ध है और यही अन्तररेखा। अपनी चरम निजी अनुभूति और व्यापक समार, क्षण और निरवधि कालके बीच अधरी राहपर कहीं एक भूमि है जहाँ शून्यको पराजित कर हम 'रचते' हैं स्थायित्व देने के लिए और सार्थकता पावने के लिए। जो पाकर खोया जा सकता है उसे रचनेके ऐसे बिन्दुपर उपलब्ध करनेके लिए जहाँसे वह फिर खोया न जाय।

क्या ऐसा है कि समूची जीवन प्रक्रिया अलग चलती रहती है और रचना प्रक्रिया का यह घनीभूत क्षण अस्मात् कभी रहस्यमय दङ्गसे अकारण आ जाता है। शायद नहीं। विज्ञाने ही क्षण है, कितना स्थितियों के जो प्रत्यक्ष अस्मद्गत लगती हैं पर कुल मिलाकर हमारे चेतन या अर्थचेतन मनमें लहरपर लहर इस एक बिन्दुका उभारती रहती है। (क्या इसीलिए, जैसा मैंने प्रारम्भमें कहा, किसी एक क्षणको याद करनेके उपाय मेरा मन जाने कहीं कहीं भटक जाता है)। जब समूची जीवन प्रक्रिया किसी न किसी रूपमें रचमाने क्षणसे सम्बद्ध होती है तो वे लोग जो अक्सर आरोप लगाते हैं कि अमुक कविता है तो मर्मस्पर्शा लम्बे जीवनसे दूर है, वे कविताके बारेमें क्या और कितना जानते हैं यह कहना कठिन है। जो एका काय है उसकी रचना प्रक्रियामें, कितने ही अप्रत्यक्ष रूपमें हो, कितना जीवन प्रक्रिया अनिवायत उलझी रहती है।

कितनी विभिन्न स्थितियाँ मसे, हम इस जीवनको उपलब्ध करते हैं। अविक्टर तो यह लगता है कि हम जा नहीं रहे हैं, निये जा रहे हैं। कभी उस नीट-टूटी यात्रा का तरह खुद चलाते हुए भी प्रदसास स्थिरताका होता है और लगता यह है कि हम ठहरे हैं पर गाकी सत्र हममेंसे गुजरता जा रहा है। कभी खुद पुलियाने पास चुपचाप खड़े रहते हैं पर प्रदसास यहाँ हाता है कि वेगुमार भीटमसे हम हरेकमेसे आ रहे हैं, जा रहे हैं। कभी अपनेमें 'सर्व' का, 'प्रत्येक' का साक्षात्कार करना और कभी 'सर्व' म, 'प्रत्येक' में, अपना। ये सत्र जाने कितनी स्थितियाँ हैं जो रचनाने क्षणम सार्थक होती हैं। वह एक निदु है जिसमें से सत्र ससरण करता है, पुन रचे जानेने लिए।

और यह प्रक्रिया केवल कुछ चुने हुए अत्यन्त सुविधा पूर्ण क्षणोंमें ही नहीं घटित होती। रोजमर्राकी जिदगीने तथाकथित अत्यन्त गद्यात्मक नीरस काम, दफ्तर, बाजार, भौदा-सुलुफ, हारी बीमारी, रोजगारके बीच भी रचनाकार का मन अनजाने चुपचाप काय सृजनकी भूमिमा प्रस्तुत करता रह सकता है। इसीलिए जाने कितने रूपोंमें कितने प्रकारसे जीवन तथा बाह्य परिवेश काव्य-कृतिमें समाविष्ट होता चलता है। यही कारण है कि गरी काव्य-कृतिका मुख्य गुण हैं सजायता, अनायास सजीयता। और यही कारण है कि जब सहज रचना प्रक्रियामें यथधान उत्पन्न कर प्रयासपूर्वक जीवन या जीवनकी ऐसी व्याख्याएँ काव्यपर जन्मदरती आरोपित करनेकी चेष्टा की जाती है, जो रचनाक अपने आन्तरिक सृजन विकाससे उद्भूत नहीं हैं, तो वे निश्चित रूपसे कायका निजाव ही पनाती हैं। जब भी काव्यमें 'दृष्टि' उभरी है तो तभी जब रचनाकारके मनमें दोनों ही स्तर स्वतः सजाय और सन्निय रहे हैं, दोनों ही एक दूसरेका अनुप्राणित भी करते चले हैं और अनुशासित भी, कभी निरोधी स्थितियाँ कभी समानान्तर स्थितियों, कभी पूरक स्थितियोंमें।

○

निस्सन्देह रचनाकारके मनकी यह स्थिति काफ़ी जटिल होती है। इस जटिल स्थितिको समझने या जी सकनेमें जो

असमर्थ हाते हैं वे अकमर इसे सरल करनेकी कोशिश करते हैं—इनमेंसे किसी एक स्तरका माट कर । सरलताकी ओर असाध्यात्मक पलायनका एक रूप यह हाता है जब रचना प्रक्रियाकी अनिवार्य प्रकृतिगत माँगोंकी उपज्ञा कर जीवनकी किसी एक सकारण परिविकी हा सज कुछ साप दिया जाता है और कनिर्म केवल निदेशित विषय (शास्त्र द्वारा, धर्म द्वारा, राजमत्ता द्वारा) नीति, आदेश, याचना, फतवोंके पद्यान्तरण तरु सीमित हो जाता है । ऐसे कायका गोरला पन जाहिर हाते देर नहीं लगती । सरलताकी ओर दूसरा असाध्यात्मक पलायन है उनका जा समूची जीवन प्रक्रिया और यथार्थका कठार भूमिसे असम्पृक्त रहना चाहते हैं अत वे रचना प्रक्रियाको जीवन प्रक्रियासे नितान्त पृथक्, कभी कभी अनिवार्यत विरोधी मान लेते हैं । वे कहते हैं कि उनकी कायप्रेरणा किसी विव्य अशरीरी लोकसे आती है, उनका रचनाकार 'द्रष्टा' और 'स्वयभू' है अत साधारण प्राणीसे कुछ ज्वाण ऊँचा है—और फिर यह तर्क यहाँ तरु ले जाता है कि न सरल रचनाकारके 'प्राण', वरन् उसकी वेशभूषा, चातचीत, तौर तरीका, सज साधारणसे कुछ प्रथक् होनी अनिवार्य हो जाती है—लोकोत्तर—क्योंकि उसकी मृदु-मृदु प्रतिभा तो इस लोकमें भटकी हुई अश्रुमय कोमल परदेशिनी है ।

काव्यसृजनकी वास्तविक भूमिकी जटिलतासे ये दाना मार्ग मुक्ति दिलाते हैं अवश्य, यह बात दूसरी है कि इन दोना मार्गों पर चलकर वह न मिले जा सम्पूर्णत कविता है, या जा प्रौढ कविता है । कभी कभी राचक लगता है उनकी नियति जो कभी इस मार्ग पर भागते हैं कभी उस मार्ग पर और ज्यां ज्यां आगे जाते हैं त्या त्या मूलत कविता से दूर होते जाते हैं ।

इनसे बहुत अलग है वह भावस्थिति जो अपनेको रचनाकार मानते हुए भी अपनेको सामान्यसे पृथक् नहीं मानती, राजमर्त्यकी जिन्दगीमें अपनेको परदेशिनी नहीं मानती ।

ऐसे लोग प्रसाधारणता का माना जा रहा था, सहज रूप से जीवन ही सम्पूर्ण परिवेश में जीवित होती है, व्यक्तित्व का हारते नहीं, जगत् का प्रभावकारिता नहीं, यह अपने हर अन्तर्दोषों में अभिव्यक्ति के द्वारा प्रत्येक 'सर्व' से 'प्रत्येक' से जोड़ने की चेष्टा करते हैं। यह उनकी अन्तर्दोष ही, पर इससे क्या, वे रचते भी तो डमी में से हैं।

○

साथ सृजन की इस अजिब भूमि पर, इस तमाम प्रक्रिया में एक सजीव रचना उभरती आती है, मन के चेतन और अचेतन स्तरों से रूपायित होती है। कभी, धार धार विभिन्न स्थितियों से गुजरते हुए, एक एक कण पनते हुए, रचनाकार अपने चेतन अंश से उसे मसूम करता है। कभी-कभी रचना की प्रारम्भिक स्थितियों से रचनाकार का चेतन मन स्वतः अनन्त रहता है। जानता है तब, जब अस्मत् उसका विरोध होता है। घण्टे भर में, दो घण्टे भर में माहात्म्य का रचनाकार उसे प्रस्तुत कर देता है।

एक संपूर्ण सजीव रचना प्रस्तुत कर देने का यह फिर रचनाकार का कार्य समाप्त हो जाता है।

उसके बाद फिर प्रक्रिया का दूसरा माह प्रारम्भ हो जाता है जिसमें रचना को पाठक के समक्ष होती है और रचनाकार बीच से हट जाता है। अब नये प्रश्न उठने लगते हैं—रचना के पाठक क्या पाता है? क्या करिने जो अनुभव क्रिया है उसका सम्बन्ध पाठक का होता है? या वह अनुभव फिर नये सिरे से पाठक के मन में पुनः रचित होता है? या पाठक के मन में कविता से आ जागता है वह कोई तीव्र ही अनुभव है?

बहुत महत्त्वपूर्ण हैं ये प्रश्न—लेकिन इनसे कथा का दूसरा ही चरण प्रारम्भ होता है, जिसमें रचनाकार स्वतः तन्मय जिज्ञासु मान रह जाता है क्योंकि वह अब स्वरचित कृति और पाठक के बीच से हट गया है

○

प्रमथ्यु गाथा

प्रमथु एक यूनानी पुराण-पुराण
 है जो सृष्टिके आरम्भमें पहली बार
 स्वर्गसे, घपितरके महलामे मनुष्योंके
 प्राणके लिए अग्नि हर लाया था।
 दण्डस्वरूप घुपितरने उसे एक
 शिलासे बंधवा दिया था और एक
 गिद्ध निरंतर उसके हृदयपिण्डको
 खाते रहनेके लिए तैनात कर दिया
 गया था। प्रस्तुत रचनामें प्रमथु,
 घपितर, अग्नि, युद्ध सभी अपना
 अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते हैं।

प्रमथ्यु गाया

प्रमथ्यु

जफ़डे हुए हैं ये मेरे हाथ
लौह शृखलाओं से
जटी हुई जो कीलों से
इस आदिम चट्टान से,

टूटी हुई है पसलियों
और मन का घाव
अन्दर का सारा दर्द
नगा अनावृत है

द्युपितर की आज्ञा से
नरभक्षी बूढ़ा गृद्ध
मेरे कंधे पर बैठ
दिन भर नोचा करता है मेरा हृदयपिण्ड
और मैं बेजम हूँ
बन्दी हूँ ।

मैंने, क्योंकि मैंने ही
प्रथम बार साहस किया
द्युपितर के महलो से अग्नि छीन लाने का
अन्धी घाटी में भयभीत भेड़ के समान
पृथ्वी यह
अँधियारे में थी सहमी खड़ी
मैंने, हँ मैंने ही प्रथम बार साहस किया

द्युपितर

साहस नहीं था,
मैंने जो नरुशा बनाया था
मानव अस्तित्व का--
उममें थी दासता,
चिनय थी, कायरता थी
भय था, आतक था
अधेग था

यह जो
 हम व्यक्ति ने
 अन्दरे को देख चुनीती
 दुम्माहस किया
 यह मेरी सत्ता का प्रथम अनादर था

मेने इसे दण्ड दिया
 वर्णित थी ज्योति
 और गर्हित था स्वातन्त्र्य
 साहस उत्पन्न ही नहीं था किया मैंने तब
 इसकी यह लाई हुई आग
 अगर साहस बन फैल गई होती मनुष्यों में
 फिर वे उठाते सर

फिर फिर-से उठाते सर

श्री जवाहरलाल नेहरू
 १९४७

जन-साधारण

इन्दिरा गान्धी, बीकानेर

मूरग नहा है जी !
 हम क्यों उठाते सर
 हम क्यों ये सब साहस करते व्यर्थ
 अग्नि जिमे लाना था ले आया !

अग्नि नहीं थी जन
 तब हमने नहा कहा
 कि जाओ अग्नि लाओ तुम

और अग्नि जग आई
हमने नहीं कहा कि अग्नि नहीं लगे हम ।

यह जो हम अब भी गड़े हैं
प्रमन्यु के आमपाग—
इमलिए नहीं कि हम तुड़
उमके अनुगामी हैं,

हम हैं तमाशगी
देग रहे हैं कैमे जफड़ा हुआ है शिलाओं से
कैमे वह कप्रे पर नैठा हुआ गिद्ध
नोच नोच गाता है उमका हत्यपिण्ड
और रात ढलते-ढलते कैमे
सारा घाव फिर से पुर जाता है
ताकि गिद्ध फिर नोचे

यह है करिश्मा और
हम सब करिश्मों के प्यासे हैं ।
चाहता अगर तो हम में से हर एक व्यक्ति
अपने ही साहस से प्रमन्यु हो सकता था
लेकिन हम डरते थे,
ज्योति चाहते थे
पर ढण्ड भोगने से हम डरते थे ।

हम सब करिश्मों के प्यासे हैं
कोई भी करिश्मा कर दिखलाये

हम सुन क्यों लें कोई भी निर्णय
हम सुन क्यों भोगें कोई भी दण्ड ?

अग्नि

वे थे सत्र स्वार्थी
विलासी थे, कायर वे
जिनके महलो मे मे बन्दी थी

मुक्त किया मुझको प्रमथु ने

उसने कहा
तुम हो ज्योति
तुम्हीं जीवन हो

माथे से अपने लगा कर प्रमथु ने
फेंक दिया फिर मुझको इन कायरो के बीच

मुझमे ये
तुम्हें ग्राम चूल्हा सुलगायेंगे
शय्या गरमायेंगे
मोना गलायेंगे
और ज़रा सा मौक़ा पाते ही
अपने पडोसी का सारा घर फूँकेंगे !

मुझको क्यों मुक्त किया
मुझको क्यों माथे से लगा कर
फिर फेंक दिया इन कायरो के बीच !

और अग्नि जग आर्द्र
हमने जहाँ कहा कि अग्नि नहीं लगे हम ।

यह जो हम अब भी गढ़े हैं
प्रमंथु के आसपास—
दुर्गलिंग नहीं कि हम तुल्य
उमके अनुगामी हैं,

हम हैं तमाशगीर
देख रहे हैं कैसे जगड़ा हुआ है शिलाओं से
कैसे वह कंधे पर बैठा हुआ गिद्ध
नोच नोच खाता है उसका तन्त्रपिण्ड
और रात ढलते-ढलते कैसे
सारा घान फिर से पुर जाता है
ताकि गिद्ध फिर नोचे

यह है करिश्मा और
हम सब करिश्मों के प्यासे हैं ।
चाहता अगर तो हम में से हर एक व्यक्ति
अपने ही साहस से प्रमंथु हो सकता था
लेकिन हम डरते थे,
ज्योति चाहते थे
पर दण्ड भोगने से हम डरते थे ।

हम सब करिश्मों के प्यासे थे
कोई भी करिश्मा कर लिखलाये

हम तुम क्यों लें कोई भी निर्णय
हम तुम क्यों भोगें कोई भी मूढ ?

अग्नि

धे धे सर म्यार्थी
बिनासी धे, कायर धे
बिनाके मतले में मैं बन्नी थी

मुक्त किया मुझको प्रम वु ने

उसने कहा
तुम हो ज्योति
तुम्ही जीवन हो

१२ १६७
०१/०१/२०२८

माथे से अपने लगा कर प्रमथ्यु ने
फेंक दिया फिर मुझको टा कायरों के बीच

मुझमे ये
मुझ पर चूल्हा मुल्गायेंगे
शय्या गरमायेंगे
मोटा गलायेंगे
और ज़रा सा मोटा पाते ही
अपने पड़ोसी का सारा घर षूँगे !

मुझको क्यों मुक्त किया
मुझको क्यों माथे से लगा कर
फिर फेंक दिया टन कायरों के बीच !

मुझको मालूम नहीं था कुठ भी
इना था सत्र कुठ अँधियारे म
अँधियारे में मैं भी इना था

अग्नि क्रिमे कहते हे
इमका आभास भी नहीं था मुझे

गिद्ध यह वेठा हे जो मेरे कधो पर
उपर उडते-उडते पहली बार उमने देन्वी थी
इन्कर अग्नि की ।

साहम था मेरा
किन्तु द्युपितर के महलो की गुप्त राह
उमने बताई मुझे—
गुरुजन हे !
सच हे यह
मेरे ऊधों पर बेठ
नोच-नोच खाता हे यह मेरा हृत्पिण्ड
फिर भी मेरा मन्तरु नत हे
होठों को भीचे निश्शब्द सह रहा हँ मैं
क्योकि यह त्रदा गृद्ध गुणी हे, जाता हे ।

मन्तरु नत हे मेरा
इमलिए नहीं कि हँ पराजित मै

इमन्त्रि कि जिनके हित अग्नि जीत लाया हूँ

उन्म नदी है साहस या सौदना

जिममें नदी है साहस प्रमथु बाने का

उत्को चिता पीड़ा के मिल जाने वाली अग्नि

माजनी उदी है

और पशु ही बताती है !

अग्नि मित्रों पर भी

बे मम पशु के पशु है

जिनको नृपस मवाद आता है

मेरी इस मर्मान्तक पीड़ा में !

देता है जो नृश गिद्ध

मेरे ही कथों पर बैठकर

शुद्ध

रुद्र मत हा

सुनो वत्स !

शोभा नहीं देती है फटुना प्रमथु को

सच है यह

मैंने ही प्रेरित किया था तुम्हें देव-अग्नि लाने को

क्योंकि धरा पर नीचे महारा अँधियारा था

जीरा भर मैंने आकाश में

निर्गन्ध चक्रर काटे

ऊँचे परत, उबड़ स्वावड घागी वाली

धरती पर कैसे उतरता मैं ?
नीचे अधियारा था

अब मैं हूँ बूढ़ा
और मेरे थके हैं पंख
कब तक आकाश में विहार करूँ
मित्रा तुम्हारे इन सख्त पुष्ट रुधो के और कहाँ बैठें मैं ?
कटु मत हो ।
आहत है मेरा अहम्
मेरे ये पल और मेने देखी थी अग्नि
मे भी ला सकता था
किंतु एक थोड़े से साहस के बगैर
मैं अग्नि जीत लाने से वंचित रहा

तुम हो मेरे प्रियजन
मेरा यह आहत अहम्
अगर तुम्हारे मामपिण्ड से बुझाता है
अपनी भृश
तो तुम क्या इतना भी नहा सहोगे मेरे लिए

मुनो वम ।
मुझको यन्त्रि मानते हो गुन्धन
तो बात मुनो
महते चलो मम तुड
माधे पर गिद्धा गली गना फभी
मा में घृणा गला लागा फभी
घृणा वर जन्म है

जो नमो में प्रयाहित
रक्त को दूषित करता है
और वह रक्त
वह तुम्हारा रक्त
अन्तनोगन्वा मुझको ही तो पीगा है ।

गुम्ना हो
मेरे शिगओ में रक्त उर रहा है तुम्हारा ही
जो भर पियो !

कट्टु मैं नहीं हूँ
पृष्ठा रिस्मे फर्रंगा मैं

ये जो जन हैं, साधारण जन हैं
उम से एक-एक के अन्दर
मूर्छित प्रमथ्यु कहीं नन्दी है ।
अपमर जिमे मिन्ग नहीं साहम कर पावे का

कोई तो एमा लिप होगा
जब मेरे ये पीड़ा-सिक्त म्बर
उयके मा नो वेध मूर्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे !

उस दिन
हों, उस दिन
अकेला मैं रहूँगा नहा
सबके हृदयों में मैं जागूँगा
मैं—प्रमथु
रुदु मैं नहीं हूँ
तृणा किसमें करूँगा मैं ?

नया रम

प्रभु

इम रम को

इस नये रम को क्या कहते है?

जिममें शृंगार की आसक्ति नहीं

जिसमें निर्भद की प्रिरक्ति नहीं

जिममें बाहों के
 फूलों जैसे पन्धन के
 आकुल परिरम्भण की गाढ़ी तन्मयता के क्षण में भी
 ध्यान रुहा और चला जाता है
 तन पिघले फूलों की
 आग पिया करता है
 पर मन में कई प्रश्नचिह्न उभर आते हैं

यह सब क्या है ?

क्यों है ?

इसके बाद

—और बाद

—और बाद

—और बाद

फिर क्या है ?

चुम्बन आलिंगन का जादू

मन को जैसे ऊपर ही ऊपर से छूकर रह जाता है

अन्दर ज़हरीले अजगर जैसे प्रश्नचिह्न
 एक एक पसली को जकड़-जकड़ लेते हैं
 फिर भी बेक्रान्त तन
 इन पिघले फूलों की रसमती आग बिना
 चैन नहीं पाता है
 प्रभु,
 इस रस को
 इस नये रस को क्या कहते हैं ?

नम्वर की दोपहर

अपों हल्के फुल्के उड़ते स्पर्शों से मुझको छू जाती है
जार्जेट के पीले पल्ले में यह दोपहर नम्वर की ।

आई गई ऋतुएँ पर वर्षों से ऐसी दोपहर नहा आई
जो क्षरिपन के कच्चे छल्ले सी

इस मन की उँगली पर
कस जाये और फिर कसी ही रहे
नितप्रति बसी ही रहे, आँसों में, बातों में, गीतों में
आलिंगन में घायल फूला की माला सी
वक्षों के बीच कसमसी ही रहे

भीगे केशों में उलझे होंगे थके पल
सोने के हसों सी धूप यह नवम्बर की
उस आँगन में भी उतरी होगी
सीपी के ढालों पर केसर की लहरों सी
गोरे कन्धों पर फिसली होगी निन आहट
गदराहट वन बन ढली होगी अगों में

आज इस वेल में
दर्द ने मुझको
और दुपहर ने तुमको
तनिक और भी पका दिया
शायद यही तिल तिल कर पचना रह जायेगा
साक्ष हुए हसों सी दुपहर पॉखें फैला
नीले कोहरे की शीलों में उड़ जायेगी
यह है अनजान दूर गाँवों से आई हुई
रेल के निनारे की पगडटी
कुछ क्षण सँग दौड़ दौड़
अकस्मात् नीले रेतों में मुड़ जायेगी

फागुन के दिन की एक अनुभूति

फागुन के सूखे दिन
क्रम्वे के स्टेशन की धूलभरी राह बड़ी सूती सी
टेन गुज़र जाने के बाद
पके खेतों पर खामोशी पहले से और हुई दूनी सी

ओंधी के पत्तो से
अनगिन तोते जैमे टूट गिरे
लादन पर, भेडो पर, पुलिया के आस-पास
(सन कुठ निस्तन्ध, शान्त मूर्छित सा
अरुस्मात --)

चौकन्नी लोखरिया उछली
औ' तेज़ी से तार फाद लाइन कर गई कास

जैसे शीशे में चटखे दरार
सहसा यह मुझको एहसास हुआ—
यह सत्र है और किसी का
यह पगटण्डी, यह गाँव-रेत, सुगो के हरे पत्र,
गति, जीवन
सबका सत्र और किसी का

मेरा है केवल निर्वासन, निर्वासन, निर्वासन

उत्तर नहीं हूँ

उत्तर नहीं हूँ
मैं प्रश्न हूँ तुम्हारा ही ।

नये नये शब्दों में तुमने
जो पूछा है बार बार

पर जिस पर सब के सब केवल निरचर है
प्रश्न हूँ तुम्हारा ही !

तुमने गढ़ा है मुझे
किन्तु प्रतिमा की तरह स्थापित नहीं किया
या
पूल की तरह
मुझको गढ़ा नही दिया
प्रश्न की तरह मुझको रह-रह दोहराया है
नई नई स्थितियों में मुझको तराशा है
सहज बनाया है
गहरा बनाया है
प्रश्न की तरह मुझको
अपित कर डाला है
समके प्रति

दान हूँ तुम्हारा मैं
जिसको तुमने अपनी अजलि में बाँधा नहीं
दे डाला !

उत्तर नही हूँ मैं
प्रश्न हूँ तुम्हारा ही !

जिज्ञासा

मणिशय्या पर जल-बालाओं का प्यार
या सागर का विष-मन्थन अपरम्पार
क्या पायेंगे
प्रभु,
हम क्या पायेंगे ?

आग्निर आयेगा वह त्नि
 जिस दिन होठों पर यद्यपि होंगे होठ
 पर खाई होगी हम दोना के बीच
 जिस दिन बोंहों में यद्यपि होगी बोंह
 पर सब रस सहसा फोड़ि लेगा राच

जिस दिन यह सारा आकुल प्रणयोमाद
 रह जायेगा केवल पिठ्ठा अभ्यास
 जिस दिन यद्यपि तन होगा तन में लीन
 पर मुर्दा होगी मन की सारी प्यास

उम दिन होगा फिर यह सिद्ध
 वैयक्तिक सीमा में बद्ध—
 जितना झूठा है यह दुख
 उतना ही झूठा है मुरा

सुख दुख इन दोनों के पार

क्या पायेंगे

प्रभु

हम क्या पायेंगे ?

वैयक्तिक सीमाएँ तोड़
 इतिहासों के सग गति मोड़
 जिस दिन हम युग-पथ पर जन-जन के साथ
 बढ़ते होंगे फिर हृद पग, उन्नत-भाथ
 हम सब के होठों पर सामूहिक गीत
 गतियों की बटगा जन-नायक के हाथ

आयेगा ठेगा भी दिन
 जन नायरु की कौर्ड छोरी मी भूल
 सलमा अभियानों को करदे पथअष्ट—
 युगवाही मपना पर पड़ जाये धूल
 आत्मा में केवल अंधियारा औ' कष्ट,

कृड़े मा हमको तन कर तट के पाम
 मन्धर गति मे चढ़ जायेगा इतिहास
 सामूहिकता भी केवल
 सानित होगी जिम दिन छ

अपनी त्रैयक्तिकता हार

क्या पायेंगे

प्रभु,

हम क्या पायेंगे ?

लेकिन इन दोनों के बीच
 मेरे ये तीरे पर एसाही म्वर
 केवल सच्चाई मा आश्रय लेकर
 गूँजेंगे, या स्व में खो जायेंगे
 या ये म्वर पहुँचेंगे जन-जन के द्वार

लज्जित माये पर कौंटों का सिंगार

या मगल वादन, जय-त्रनि, उन्दनवार

क्या पायेंगे

प्रभु,

हम क्या पायेंगे ?

सक्रान्ति

सूनी सडकों पर ये आचारा पॉव
माथे पर टूटे नक्षत्रो की छॉव

कब तक
आखिर कब तक ?

चिन्तित माघे पर ये अस्तत्यस्त बाल
उत्तर, पच्छिम, पूरव, टक्मिवा-श्रीगाल

कच तक
आखिर कच तरु ?

लङ्कने चाली मुट्टी जेचों में बन्द
नया दौग लाने में असफल हर धन्द

कच तरु
आखिर कच तरु ?

पराजित पीढी का गीत

हम सब के दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ ।

हम थे मैत्रिण अपराधेय
पर हम थे बेरम लानार
यह भा कटपुतली का रोल
ऊपर थी गर्ज, पर लरड़ी के थे मव हथियार ।

हम मरके थे अपो गीत
आखिर तक गाने की शर्त
पर जाने कैसे ऐसे चले बोल —
हमने गाया रुद्ध, पर रुद्ध निष्कण अर्थ !

तुम क्या जानोगे ओ प्रभु !
उमके मन का कटु विरोध
जिमकी निष्ठा के आगे
गर्हित था छोटे से छोटे समझौते का लोभ ।

तुमने कब श्रेणी मकाति
तुम क्या समझोगे ओ प्रभु !
इन गन्धवरोधों का दर्द—
कैसे तरणार्द्र में ही
घुट भर जाते हैं विश्वास
प्राणों की नमिधायें जम कर हो जाती हैं सर्द !

फिर भी यदि तुमको मजूर
हमको भटकाओ रुद्ध और
यदि तुमको फिर भी मजूर
मन्चाई की बाँटो में हम सब पायें मत ठौर,

तो कम से कम करणामय
इतना तो दो ही चरदान
दो हमको फिर झूठे लक्ष्य
दो हमको फिर झूठे युद्धों का झूठा मैदान !

तुम क्या जानोगे ओ प्रभु
सघर्षा के ही अभ्यासी ये प्राण
हो जाते कितने बेचैन
छिन जाते हमसे जग शत्रु, छिन जाते ईमान !

दो हमको फिर झूठे युद्ध
दो हमको फिर झूठे ध्येय
हारेंगे फिर यह है तय
फिर उसको मानेंगे हम प्रभु की हार
अपने को मानेंगे फिर अपराजेय !

हम सबके दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ !

हम सब सैनिक अपराजेय !

/ कौन चरण ?

जिम दिन

अपनी हर आम्था तिनके गी टूटे

जिम दिन

अपने अन्तरतम के विश्वास सभी निम्न शूटे,

उस दिन होंगे
वे कौन चरण
जिनमें इस लक्ष्यभ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त में शरण ?

जब हम पर छाये भ्रम दोहरा
जर्जर तन पर कल्मष, हारे मन पर कोहरा
हर एक सूत्र जिसको समझे हम प्रभु का स्वर
कसने पर जिस दिन साप्ति हो शब्दाडम्बर
हर कदम पड़े झूठा
जैसे चौसर का पिटा हुआ मोहरा

उस दिन
होंगे वे कौन चरण
जिनमें इस लक्ष्यभ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त में शरण ?

जिनकी लय पर
साधे हमने आत्मा के स्वर
वे अकस्मात् मुड़ जिम दिन पथ गह लें दूजा
अतर में धुटती रह जाये टूटी पूजा
माथे के नीचे रह जाये ठण्डा पत्थर

उम दिन
होंगे वे कौन चरण
जिनमें इस लक्ष्यभ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त में शरण ?

सब जल्न पर जो शेष रहे फण भर सोना
 फौपती टँगलियों से हाकरो जिम रोज पडे यत भी सोना
 अपनी साँसें तक भूँ जय अपगा परिचय
 पाँवों नीचे तक फी धरती जिस रोज न दे हाकरो आशय
 जब हम गिगलने दौड़े खुद अपने मन का कोना कोना

उम दिा
 हंगे वे फौन चरण
 जिनमें इस लक्ष्यभ्रष्ट मा को
 मिल् पायेगी अन्त म शरण ?

“उम लिन
 मैं दूँगा तुम्हे शरण
 मैं जनपथ हूँ
 मैं प्रभुपथ हूँ, मैं हूँ जीवन
 जिम भित्तिज रेख पर पहुँच व्यक्ति की राहें झूठी पड़ जाती
 मैं उम सीमा के बाट पुन उठने वाला नूतन अथ हूँ
 मैं प्रभुपथ हूँ
 जिसमें हर अन्तर्द्वन्द्व, विरोध,
 निपमता का
 हो जाता है अन्त में शमन । ”

“प्रभु ।
 पर तुम तो केवल पथ हो
 चलना तो हमको ही होगा
 हिम की ठण्डी चट्टानों पर

गलना तो हमको ही होगा
सम टूटे और अधूरे हम
इस जनपथ को
इस प्रभुपथ को
कर पायेंगे किस तरह ग्रहण ?

हमको कुछ ऐसा लगता प्रभु
ऐसे कोई भी नहीं चरण
जिनमें मिल पाये हमें शरण
तुम भी केवल निष्क्रिय पथ हो

चलना तो हमको ही होगा
चलने में ही हम टूटें और अधूरे का
शायद कुछ होगा नया गठन
आश्रय देंगे हमको अपने
जर्जर पर अपराजेय चरण

आखिर होंगे वे यही चरण
जिनमें इस लक्ष्यभ्रष्ट मन को
मिल पायेगो अन्त में शरण ।”

इनका अर्थ

ये शामें, ये सच की सच शामें
 जिनमें मैने घबरा कर तुमको याद किया
 जिमें प्यासी सीपी-मा भटका विफल हिया
 जाने किस आने वाले की प्रत्याशा में
 ये शामें
 इनका क्या कोई भी
 अर्थ नहीं ?

ये लमहे, ये सारे सूनेपन के लमहे
जब मैंने अपनी परछाहीं से चारों का
दुख से वे सारी टूटी वीणाएँ फेंकीं
जिनमें अब कोई भी स्वर न रहे

ये लमहे,
इनका क्या कोई भी
अर्थ नहा ?

ये घड़ियाँ—ये बेहद भारी-भारी घड़ियाँ
जब मुझको फिर यह एहसास हुआ
अर्पित होने के अतिरिक्त और राह नहा
जब मैंने शुरू कर फिर माथे से पथ छुआ
फिर बीनी गत-पग-नूपर से बिग्वरी मणियाँ
ये घड़ियाँ

इनका क्या कोई भी
अर्थ नहीं ?

ये घड़ियाँ, ये शामे, ये लमहे
जो मन पर कोहरों से जमे रहे
निमित्त होने के क्रम में
क्या
इनका कोई अर्थ नहीं ?

जाने क्यों कोई मुझसे कहता
मन में कुछ ऐसा भी है रहता
जिसको छू लेने वाली कोई भी पीड़ा
जीवन में फिर जाती व्यर्थ नहीं !

अर्पित है पूजा के फूलों सा जिसका भा
आनाने दुःख कर जाता उमका परिमार्जन
अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को
नतमन्तक होकर यह कर देना गहन अदृश

ये सब बन जाते पूजागीतों की षड्रियों
यह पीड़ा, यह चुल्ला, ये शाग, ये षड्रियों
इनमें मे क्या है

निसका कोई अर्थ नहा ?
कुल भी तो व्यर्थ नहीं !

गैरिक वाणी

मेरी वाणी
गैरिक वसना
भूल गई गोरे अगो को
फूलो के वसनो मे कसना
गैरिक वसना
मेरी वाणी !

अब विरागिनी
मेरा निज दुख, मेरा निज सुख
दोनों से तटस्थ रागिनी
अब विरागिनी
मेरी वाणी !

चन्दन शीतल,
पीडा से परिशोधित स्वर मे
उभरा एक नवीन धरातल
चन्दन शीतल
मेरी वाणी

भटके हुए व्यक्ति का सशय
इतिहासों का अन्धा निश्चय
ये दोनों जिम्में पा आश्रय
चन जायेंगे सार्थक समनल

ऐसे किमी अनागत पथ का
पावन माध्यम भर है
मेरी आजुल प्रतिभा
अर्पित रसना
गौरिक वसना
मेरी वाणी

जल सी निर्मल
मणि सी उज्ज्वल
नवल, स्नात
हिम धवल
ऋजु
तरल
मेरी वाणी ।

केवल तन का रिश्ता

अब यह जूही के फूलों का तन नहीं रहा

हिरन की उल्लासों जैसा हल्का फुर्तीला
रहरो में बल खाती किरनों-सा लचकीला
अब यह जूही के फूलों का तन नहीं रहा
पर जाने क्यों

यह पहले से अधिक सुन्दर है
जाने क्यों इसमें पहले से अधिक जादू है

अब इसमें ममता है
अब इसका रोम रोम
तृष्णाओं, झगड़ों, समझौतों, मनुहारों की
जाने कितनी मीठी मृतियों से उसा हुआ

किन्ती बार चिन्ता से जन्ने तुए माधे को
इन ता मे आशय मिला
फोमल हमदर्दों मिला
इम ता ने किन्ती बार
प्राचल, पत्रि स्नेह
मेरे हारे आकुल पर मा निगेरा है
अउ इसमें पहले से
कहीं अधिक गमता है
रस है
अपनापन है !

तन का—

केवल तन का रिश्ता भी
मामन्ता से कितना ऊपर उठ जाता है

अउ यह जूही के फूला सा तन नहीं रता
पर इसमें पहले से कहीं अधिक जादू है !

मेघ-दुपहरी

ढल रही है
मेघ की चूनर लपेटे दोपहर
एक उचटा हुआ सा
सुनसान सन्नाटा अकेला जग रहा है
मेघ धूमिल दिशाओं की बॉट में !

न जाने क्यों

आज यह अपना

बहुत परिचित बहुत प्यारा शहर

अजनबी, अनजान, अन्यमनस्क सा लग रहा है

बादलों की नील-चमुनी छाँट में ।

वही मैं हूँ

वही मेरा वीतरागी मन

नहीं अब निममें किमी से

न्वास कोई नेह, कोई लगा

किन्तु फिर क्यों चित उचटना काम से ?

क्यों उदामी और बढ़ती शाम से ?

ठू गई मुझको

न जाने कौन निमरी बात

भूला क्षण

जिम तरह छू जाय नागिन

पूल को खिन्ते पहर

ढल रही है

मेघ की चुनर लपेटे दोपहर !

प्लेटफार्म

बहुत उदास सा पीले गुलाब सा चेहरा
हथेलियों में टिका हुआ गुमसुम

सुनो इतनी अजीब सी किम्मत
ले के पैदा हुये थे क्यों हम तुम ?

इतने दिन बाद

एक अजनबी को देख
आँगन में नहाती हुई गौरैया भागी
और झुरमुट में छिप कर व्याकुलता से चहती ,

मुझको पहचान आज
आज इतने दिनों बाद देख
थाले की जूही कुछ टोली, उदासी से महकी ,

सिर्फ एक तुम थीं
जो हिलीं नहीं, डुलीं नहीं
जीने पर खड़ी रहीं
यादों में डूबी सी, ख्यालों में बहकी ।

कस्व की शाम

झुमट म दुपहरिया कुन्हाई
खेतो पर अन्हियासी घिर आई
पश्चिम की सुनहरिया धुधराई

टोलो पर, तालो पर,
इक्के-दुक्के अपने घर जाने वालो पर
धीरे धीरे उतरी शाम !

ऑचल से छू तुलसी की थाली
दीदी ने घर की द्विचरी वाली
जमुहाई ले लेकर उजियाली,

जा बैठी ताखो मे,
घर भर के बच्चो की ऑखों मे
धीरे धीरे उतरी शाम ।

इस अधरुच्चे से घर के ऑंगन
में जाने क्यों इतना आश्वासन
पाता है यह मेरा टूटा मन

लगता है इन पिठले चपों में
सच्चे-झूठे, मीठे कड़वे सपनों में
इस घर की छाया थी टूट गई अनजाने
जो अब झुक कर मेरे सिरहाने—
रहती है

“भटको बेचात कहीं !
लौटोगे अपनी हर यात्रा के बाद यहा !”

धीरे धीरे उतरी शाम ।

धूलमरी भाँधी का गीत

ओ रे
धूल भरे पयन झफोरे !

तेरे हाथों बिल्कुल बेबस हूँ मैं
जैसे चाहे तू ने हरदम म्बीचे डोरे !

आज गया तू पिठली यादें शरुशोर—
पहला पहला घायल मन, वय कैशोर
ऐसी थी, मिल्लुल ऐमी ही थी शाम
सूने चौराहो पर ओधी का शोर

ओधी ही सी थी जो निकल गयी
शेष रहे उखडे निरने, टूटी टार
उस दिन जो बहका तो आज तरु
न पहुँच सका मैं अपने ही घर के द्वार
झूठे आलिंगन से, झूठे आलिंगन तरु
यूँ मे भटका कितनी गर !

अब तो पग जर्जर, राहें नामालूम
आ मेरे बालो को निम्बरा कर चूम
मुझ पर कर टूटे पत्तो की बौछार
कसकरुन से भर मेरी पलकें मासूस

जाने क्या है तुअमं जिसके आगे फीके
लगते है अगो के जादू गोरे

पतझड की सझा को
पाहुन बन कर आ,
ओ सूसे मुँह, धूल भरे पवन झकोरे !

ओऽऽऽरे !

आँगन

बरसों के बाद उसी सूने से आँगन में
जाकर चुपचाप सहे होना
रिसती सी यादों से पिरा पिरा उठना
मन का कोना कोना

कोने से फिर उन्हा सिसकियो का उठना
फिर आकर बाहो मे खो जाना
अरुम्मात मण्डप के गीतो की लहरी
फिर गहरा सन्नाटा हो जाना
दो गाढ़ी मेंहदी वाले हाथो का जुडना,
कॅपना, बेगस हो गिर जाना

रिसती सी यादो से पिरा पिरा उठना
मन का कोना कोना
बरसो के बाद उसी सूने से आगन मे
जाकर चुपचाप खडे होना ।

अवशिष्ट

दुख आया
घुट घुट कर
मन मन मैं खीज गया

सुख आया
लुट लुट कर
फन फन मैं छीज गया

क्या केवल
इतनी पूँजी के बल
मैंने जीवन को ललकारा था

वह मैं नहा था, शायद वह
कोई और था
उसने तो प्यार किया, रीत गया, टूट गया
पीछे मैं छूट गया

उपलब्धि

मैं क्या जिया ?
मुझको जीवन ने जिया—
बूँद बूँद कर पिया, मुझको
पीरर पथ पर खाली प्याले सा छोड़ दिया

मे क्या जला ?
मुझको अग्नि ने छला—
मे रुन पूरा गला, मुझको
थोड़ी सी आँच दिखा दुर्ल मोमप्रती सा मोड़ दिया

देगो मुझे
हाथ मैं हूँ वह सूर्य
जिसे भरी दोपहर में
अँधियारे ने तोड़ दिया ।

स्वयम् को दुहरायेगा ?

प्यार यह क्या अब कभी भी स्वयम् को दुहरायेगा ?
नहा ! शायद नहीं

होठ पर अब होठ जब भी आयेगा
ऑसुआ का चही ग्वारा स्वाद फिर-फिर पायेगा

हाथ में जन हाथ कोई आयेगा
उष्ण ममता नहा केवल एक खालीपन उसे ठू जायेगा

चौह मे जन जिम्म कोई आयेगा
बीच में तुमको सिसकता पायेगा

प्यार यह क्या अन कभी भी स्वयम् को दुहरायेगा
नहीं ! शायद नहीं

सावुत भाश्ने

इस डगर पर मोह मारे तोड़
ले चुका कितने अपरिचित मोड़

पर मुझे लगता रहा हर बार
कर रहा हूँ आइनों को पार

दर्पणों में चल रहा हूँ मैं
चौखटों को छल रहा हूँ मे

सामने रेफिन मिली हर बार
फिर वही दर्पण मढ़ी दीवार

फिर वही झूठे झरोखे द्वार
वही भगल चिह्न बन्दनवार

किन्तु अफ्रित भीत पर, बस रग से

× × ×

अनगिनत प्रतिभिम्ब हँसते व्यग से

फिर वही हारे कदम की होड
फिर वही झूठे अपरिचित मोड

लौट कर फिर लौटकर आना वहा
किन्तु इससे छूट भी पाना नहा

टूट सकता, टूट सकता काश
यह अजन सा दर्पणों का पाश

दर्द की यह गॉठ कोई खोलता
दर्पणों के पार कुछ तो बोलता

यह निरर्थकता सही जाती नहीं
लौट कर, फिर लौट कर आना वही

रात में कोई न रूच पाऊँगा
अन्न में मैं क्या चढ़ी बच जाऊँगा

विस्व तुल जाइँगा म भटका हुआ
चौमदों के तारा पर लटका हुआ

रात अधियारी हवा तेज

दीग्न नहीं पडते हैं पेड़,
मगर डालों से ध्वनियों के
अगणित झरने झरते झर-झर
तेज और मद
हर झफ़ारे के सग
हवा चलती है और टहर जाती है !

सन्नाटा
गूँगे के अनबोले नाम्य सा—
जाग्रत है यह मेरा मन
पर निर्गुण है !

ट्रेन न सीम ली
दूर कहां लोग अभी चीरित हैं
चलने हैं, यात्राएँ करते हैं, मजिद है उम्मी ।

यात्र पटना है कभी
बहुत मुश्किल पों फटो क पल
भने भी पत्र यात्रा की गी ।
कच्ची पगडण्डी पर
पोंतों और मरपत के झाडा म
इसी तरह,
तेज हवा चलती थी और धर जाती थी

सीमों फिर बोली
मुझे ! मेरे मन हागे मन ।
दूर कहां लोग अभी चीरित हैं,
यात्राएँ करते हैं, मजिद है उनकी

क्योकि

फल भी हम खिलेंगे
हम चलेंगे
हम उठेंगे

और

वे सब साथ होंगे
आज जिनको रात ने भटका लिया है !

निर्माण-योजना

[कविता को मिनिस्ट्री द्वारा प्रस्तुत]

१ बाध

बाँधो !

नदी यह घृणा की है

काली चट्टानों के

सीने से निकली है

अन्धी जहरीली गुफाओं से

उवली है ।

रमरो घृते ।।

हरे वृष सङ्ग जायगे
तरी यह घृणा की है

लफिन नहा है निरर्थक यह
पैधो से इसको भी अर्थ मिल जाता है ।
इसकी ही न्यारे म
बिचरी के शक्तिमान घोंट्टे ह सोये हुए ।
जोतो उहे खेतों म, हलों म—
भेजो उहे नगरों में करे म—

बदलो घृणा को उबियाले में
तारुन में,
नये-नये रूपों में साधो—
चौधो—
नदी यह घृणा की है !

२ यातायात

बिना किसी बाधा के
नित नयी दिशाओं में
जाने की
सुविधा दो

बिना किसी बाधा के
श्रम के पसीने से
सिंची हुई फमलों को
खेतों से अँतों तक जाने की
सुविधा दो

बिना किसी ग्रहन के
हर चलते राहों को
यात्रा में
अक्सर थक जाने पर
मन चाहे नये गीत गाने की
सुविधा दो

कभी-कभी अजनबी रहस्यमय पुकारों पर
मन को अपरिचित नक्षत्रों की राहों में
जाकर खो जाने की सुविधा दो ।

३ इपि

ये फमलें काटो
पिठले जमाने में
बीज जो बोये विपमता के
आज बही सोंपो की खेतों उग आई है ।

धरती को फिर से सँभारो
बयारी में बीज नये डालो
पसीने के, अँसू के
प्यार के, हमदर्दी के

मेंड़ें मन नोंधों
भूमि सत्र की,
दर्द गवका है ।

४ स्याम्भ्य

वे सत्र बीमार है
वे जो उन्मादग्रस्त रोगी से
मनों पर चाकर चिल्लाते हैं
वक्तते हैं
भीड़ में भक्तते हैं

वात पित्त कफ के बाद
चौथे दोष अहम् मे पीड़ित हैं !

वर्ष्नी-वर्ष्ती में
नये अहम् के अम्पनाल चुन्नाओ
वे सत्र बीमार हैं
दगे मत-—तरम न्वाओ !

ॐ गुलाम बनाने वाले

और भी पहले वे कई बार आये है

एक बार
जब उनके हाथों में भाले थे
घोड़ों की टापो से खैर की चट्टानें काँपी थीं

एक बार
जब भालों के मजाय
उनके हाथों में तिचारती पगाने थे
बगल में सगीनें थीं

रुति इन बार और चुपके से जाते हैं

जाते हैं, तिनिने हावा में हैं

जेगरे,

गैन्डियाँ,

दृक्खिन्टि पातपोरे,

रग रिग्गी प्रिन्गों

जाते हैं तिनिने पाग

रग रिग्गी चोरे

[तिनिने वे हुनम के गुणारिक वल्ग मरते हैं]

गैन्डो आते वाले

[दूर किमी नगरी में छप हुए]

पैन्डले,

रोटी और पैन्डले के दगे में टंक-टंक कर जाई हैं

दूर रिमी नगरी में इली हुई ज़ाँरे ।

दग है नया

लेकिन बात यह पुरानी है

घोड़ों पर रख कर, या थैली में भर कर,

या रोटी में टंक कर, या फिटलों में रग कर

वे ज़ाँरे, केवल ज़ाँरे ही लाये हैं

और भी पहले ३ फट बार आये हैं !

एक वाक्य

चेक बुरा हो पीली या लाल,
दाम मित्रके हो या शोहरत—
कह दो उनसे
जो खरीदने आये हो तुम्हें
हर भूरा आदमी तिकाऊ नहा होता है !

वाणभट्ट

मिथ्या था जामुन के कुजों से आच्छान्ति
शोण का निचाट फूल
मिथ्या था फागुन में गुच्छो-गुच्छो फूला
ईगुरी अशोक-फूल

मिथ्या था, स्मृति के अतिरिक्त म हुनता धिपता हुआ
 भट्टिनी का म्लान मुख
 मिथ्या था, अपने को किसी महाराग को समर्पित कर
 डूब डूब जाने का अतीन्द्रिय सुख

सत्य है एक मणिजटित दुपट्टा, एक
 मुद्रा-मजूपा, एक पालकी ।
 सत्य हैं आत्मा पर योपी हुई सीमायें
 सोने के जाल की ।
 सत्य है कृत्त्रों, वधियों, नगरसेठों, वेश्याओं के आगे
 निके हुए शब्दों की यह नीडा
 सत्य है राजा हर्षवर्धन के हाथों से मिला हुआ
 पान का सुगन्धित एक लघु बीडा

[चाहे वह जूठा हो,
 पर उस पर लगा हुआ वर्णदार सोना था ।
 हाय बाणभट्ट ! हाय ।
 तुमको भी, तुमको भी, आखिर यही होना था ।]

बृहन्नला

आज से सौ बरस बाद
मेरी रचनाएँ पढ़ कर तुम यह जानोगे
इम सकलकाल में तो अर्जुन एक में ही था
अन्यायी दृष्टियों में सालती टकराएँ थी जिसके गाडीव की !
में ही दृष्टिहीनो की दुनियाँ में
औँगें खोल देवना रहा था यथार्थ को !

किंतु यत्नि वर्षा रात्र मेरी रचनाएँ पढ़ने की जगह
 मुझको आज देखो तुम—
 तो कैसा लगेगा तुम्हें
 मुझको यह जानने का अनुकूल है ।

युद्धक्षेत्र, कर्मक्षेत्र में मुझको हँदोगे व्यर्थ तुम
 आज तो मिलूँगा मैं तुमको पराये अन्त पुर में
 चाटुकार विद्वानों, मूर्खा महिषियों
 अशिक्षित विद्वेषकों से घिरा हुआ

मैं जो हूँ नृपति निराट का निग्वस्त दास
 नृत्य, गीत, कविता, कलाओं का ज्ञाता,
 किंतु हरदम भयान्त—
 मेरा अज्ञातवास खुल न जाय
 छिन्न न जाय मेरी आजीविका इसी भय से
 पीछे सभी को धोखा देकर
 सामने सभी के झूठी कसमें खाता हुआ ।

कानों तक प्रत्यचा खींचने के लिए स्यात
 मेरी भुजाएँ ये
 मिलेगी हर छोटे-से-छोटे दरबारी के सामने
 प्रणाम से झुकी हुई,
 पाओगे तुम मेरा ओजस्वी सेनिक तन
 कुत्सित नपुंसक मुद्राओं में ढला हुआ ,
 मेरा निस्त्यात धनुष
 तुमको मिलेगा किमी निर्जन तर-शाखा पर
 मुर्दा चिमगादड़ सा टँगा हुआ ।

व्याम यह लिंगे कि
अन्यायी दुर्याधन ने जब हमला योग या बिराट नगरी पर
मैने भी अपना प्रदर्शित किया या शौर्य ।

कैसा लगेगा तुम्हें
जब तुम यह जानोगे
कि यह तो लिंगाया था मैने ही
सुघाट शाम जा-ना कर
दुस्र की गाथा गा कर
पाँचों पड़-पड़ वृद्ध यास के ।

अमल में हुआ यह था
मेरे चारो भाई जूझते अकेले रहे
मै तो किनारे बड़ा हर आने वाल से
घररा कर कहता था—“इधर मत,
इधर मत, इधर मत, जाना जी तुम, इधर हम तटस्थ हे ।”

कैसा लगेगा तुम्हें
जब तुम यह जानोगे
कि मै तो गया था वर्ता
लड़ने के लिए नहा—
रक्तमने, घेस, दम तोड़ते शत्रु के
गहने धपड़े लूटने के लिए ।

कैसा लगेगा तुम्हें
जब तुम यह जानोगे
कि दूसरे जब जूझ रहे थे नरयुग लाने का
मैने सिर्फ उत्तरा की गुड़ियों सनाई थीं ।

टूटा पहिया

मे
रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
एक दिन मुझे फँको मत !

क्या जाने कब
इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय !

अपने पाप को असत्य जानते हुए भी
बड़े-बड़े गतारंगी
अकेली गिहत्थी आराज को
अपने ब्रह्मानों से उचक देना चाहें
तब मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया
उमके हाथों में
ब्रह्मानों से रोटा डे मरना हूँ ।

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे पैंको मन
इन्द्रिगो की मामूटिक गति
सहसा झूठी पड़ जाने पर
बया जाने
मच्छाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले ।

•

एक अवतार में

सुनते हे तुम किसी अवतार में कडुए थे

अपनी इस वज्रोपम पीठ पर
तुमने यह धरती टिकाई थी—

[लेकिन उपयोग क्या किया था
सुरोमल मर्मस्थल का ?

उमने क्या नीने उतर
थाहा था आस्तित्व का नागर
पनोन्मुख होकर

निगमम, निगशा, भटका
मीलन, शीचड़, फाई
पाप, उबकाई—
के स्वर छुणधे ?]

यात्र करो प्रभु,
जब तुमने पीठ पर
धरती उठाई थी—

सबका बोझ
अपने पर लेने की
ताकत कहाँ पाई थी ?

दान प्रभु के नाम ।

राह पर बिछाये है
मैंने जो—
तीखे नुकीले—ये
पूजा के फूल नहा
शीशे के टुकड़े हैं—

पाँवा में गढ़ने जब
सामने पढ़ेंगे जब

तुमको निन्दायगे
रुठ हठी शकंठ
प्रभुताई, ममीहाई
की भोटी नरनें

दम जिहें गुम्मे से उबलता हूँ
उबलता हूँ
उबलता हूँ
कर तो कुछ करना नहा ।

[क्रोध अभिमान भी सुनी को अपित कर दो
तम्मिन्नेव करणीयम् प्राधानादिकम्]

तुम भी कहोगे क्या
जाओ ।

मय कुछ म्योया है जब मैंने
एक एक कर

मोह क्या इसी का फल ?
क्रोध, अभिमान का ?
इसको भी मोगते हो ?
ले जाओ ।



अर्द्ध-स्वप्न का नृत्य

दीपक की लौ कोपी
परदों में लहर पडी

शीघ्रे मे अनजाने तन के आभास हिले
अनदेखे पग मे जादू के घुघरू छमके
क्रालीनो के ऊनी फूल दवे और खिले
थाप पडी पहले कुछ तेजी से, फिर थम के

फिसने छेडी पिठले
जनमो मे सुनी हुई
एक किमी गाने की
पहली रगीन कडी

अगहन के कोहरे से निर्मल हलके तन के
 टोने महमा जैसे क्रमरे में घूम गये—
 हाशो में ताज़ी कलियों के रंगने मनके
 फन्धो पर बेणी के वृत्तर्माप घूम गये

दीपक के हिलते
 आलोको को छेड गडे
 चम्प की लहराती
 बाँहें घड़ी बड़ी

इन बहकी घड़ियों की गहरी ग्वामोशी में
 जाने कम रात हुई जाने कम बीत गई
 मन के अधियारे म उभरे धीमे धीमे
 रगों के द्वीप नये, चाणी की भूमि नई

गणियों के वृत्त नये
 जिन पर हम भूल गये
 लक्ष्यहीन यात्राओ की
 वह सुनमान घड़ी

नर्तन यह खींच वहाँ मुझको ले जायेगा
 क्या ये सब पिदली तट-रेखाएँ छूटेंगी
 या दीपक गुल होगा उलमन थम जायेगा
 गीतों की सब कड़ियाँ सिमकी में टूटेंगी

जाने क्या होगा हे ?
मन है या दोगा हे ?
या यह भी म्योगा हे ?
छलना की एक लड़ी !

दीपक की लौ कौपी
परदों में लहर पड़ी

बातें

सपनों में हृदय से स्वर में
जब तुम कुल भी रुदती हो
मन जैसे ताज़े पृथ्वी के क्षरों में धुल जाता है
जैसे गंधों की नगरी में गीतों से
चन्दन का जादू दरवाजा खुल जाता है

गातो पर गाते, ज्यों जूही के फूलों पर
जूही के फूलों की परतें जम जाती हैं
मन्त्रों में बँध जाती है ज्यों दोनों उम्रें
दिन की ढलती रेगम-लहरें थम जाती है ।

गोधूली में चरवाहों की बगी जैमे
शब्द कहीं दूर, कहीं दूर अस्त होते है

ग्वामोगी छाती है
एक लहर आती है
सहसा दो नीरव होठों की सार्थकता
दो कँपते होठों तरु आने में रह जाती है !

साँझ के बादल

ये अनजान नदी की नावें
जादू के से पाल
उड़ाती
आतीं
मन्थर चाल !

नीलम पर फिरनो
की सॉझी
एऊ न डोरी
एऊ न मॉझी
फिर भी लाद निरन्तर लातीं
सेन्दुर और प्रवाल ।

कुठ समीप की
कुठ सुदूर की
कुठ चन्दन की
कुठ कपूर की
कुठ में गेरू, कुछ में रेशम
कुछ में केवल जाल ।

ये अनजान नदी की नावें
जादू के से पाल
उडाती
आता
मन्थर चाल

० यह ढलता दिन

यह ढलना दिन, पिछरे बादल, नेह्न हुआ हुआ सा जी
जैसे कोहरे में डूबी हो रगीन गुलाबों की घाटी
आजान दिशाओं में जाती यह श्याम घटाओं की रेखा
मटमैले ऑचल पर मोती सा
चोंद ढलक आया लेकिन—
मेने जो आसूँ पोंछ लिया, किमने ? जाना किमने देगा ?

नाचों ने लगर डाल लिये, घाटों पर सया-झीप जले
 मेले से सन राही लौंटे, अपनी अपनी चौपाल तले
 गहना गुरिया, पखे उलिया, टिडुली बेंदी, सेन्दुर सारी
 मोरह सिंगार सजे, सन गाग
 उनादा हो आया लेकिन-
 सुनसान कछारों से मुझको आवाज़ किमी ने सहमा दी

आवाज़ मगर वह झूठी थी, नाच झूठा, मेले झूठे-
 ये बादल शकल बदलते है, बादल उमड़े, बादल टूटे
 जी टूटा मा था बहक गया, यह बादल का ताना बाना
 कुछ गाँव बसे, कुछ गाँव मिटे
 बाँहों में चुपके से लेकिन-
 मैंने जो आँसू पोंछ लिया, किमने देखा किमने जाना

यह बादल का ताना बाना
 बेहद डूबा डूबा सा जी
 जैसे कोहरे में डूबी हो
 रगीन गुलाबों की घाटी

धुपती नदीमें

आज मैं भी नहीं अकेला हूँ
शाम है, दर्द है, उन्मत्त है

एक स्वामिश सौंश-तारा है
दूर छूटा हुआ किनारा है
इन सना से बड़ा महारा है
एक धुँधली अथाह नदिया है
और बहती हुई दिशा सी है

नाव को मुक्त छोड़ देने में
पतवार तोड़ देने में
एक अज्ञात मोड़ लेने में
क्या अजब सी, निराश सी,
सुख-प्रद, एक आधारहीनता सी है

प्यार की रात ही नहीं साथी
हर स्तर साथ साथ ले आती
प्यास, ऐसी कि बुझ नहा पाती,
और यह जिन्दगी किमी सुन्दर
चित्र में रगलिखी सुरा सी है

ग्राम है, दर्द है, उन्मत्त है
आज मैं भी नहा अकेला हूँ

शाम दो मनम्यितियाँ

शाम है, मैं उदास हूँ शायद
अजनबी लोग अभी रुच आये
दमिये अनलुप्त हुए सम्पुत्र
फौा मोती सहेज कर लाये
कौन जाने कि लौटती घेला
कौन से तार कहीं छू जायें !

बात रुच और छेड़िण तन तक
हो दया ताकि बेमली की भी,
द्वार रुच बन्द, रुच खुला रखिण
ताकि आहट मिले गली की भी—

देखिये आज कौन आता है—
 कौन सी बात नयी कह जाये,
 या कि बाहर से लौट जाता है
 देहरी पर निशान रह जाये,
 देखिये ये लहर डुबोये, या
 सिर्फ तटरेख छू के बह जाये,

कूल पर कुछ प्रनाल छुट जायें
 या लहर सिर्फ फेन वाली हो
 अधखिले फूल सी विनत अजुली
 कौन जाने कि सिर्फ खाली हो ?

२

वक्त अब बीत गया बादल भी
 क्या उन्हास रग ले आये,
 देखिए कुछ हुई है आहट सी
 कौन है ? तुम ? चलो भले आये ।
 अजनबी लौट चुके द्वारे से
 दर्द फिर लौट कर चले आये

क्या अब है पुरारिये जितना
 अजनबी कौन भला आता है
 एरु है दर्द वही अपना है
 लौट हर बार चला आता है

आन्विते गीत मय उमी के है
आहती चान भी उमी की है
आउगे रिा मभी उमी के है
अनहुई गत भी उमी की है
जीत पहले पहल मिनी थी जो
आहिगी मात गो उमी की है

मक मा म्वाट छोड़ जाती है
जिन्गो तृप्त भी व प्यामी भी
लोग आये गये चरार हैं
शाप गहग गई, उन्ामी भी !

अन्धेरे का फूल

रात आधी बीतने पर
डूब जाता चोंद
एक बहुत विशाल जादू-फूल मिलता है
अन्धेरे का

गली, आँगन, छत, झुंडेरों ने
फाँपनी फाँपनी पेंगुरियों उगरती है

तुड़ अन्धेरी, तुड़ उगागर
ये फट्टे गलियाँ
दीगनीं है उम रहे फूल से उखी
तुहारी गोर-भाऊ उँगलियाँ

और भेग मा
कभी उम फूल के अन्दर कभी बाहर
भटकना है—
उम भगर मा
फूल ने तिमको त गरा प्रैद
लेकि मुक्त भी छोड़ा तर्ग !

यादो का बदन

यादो का बना हुआ बदन

कॉपते अधेरे मे

बॉहो के घेरे में

चुपके से आकर सो जाता है

छाया की रेखा सा
चिन्तुल आटेगा सा
मर्मिां म, वमना है
अन्न अन्न वमना है
समभानि वमना म
परदृष्ट लेना है—स्वो जाना है

यादीं का बना हुआ बना

आँगन-वेली

पूली है आँगन की बेल

ओसधुला एक गझिन गुच्छा
अनजाने में
कोहनी से टू गया

पहले भी ऐसा होता था यदुभा
लेकिन
आज नया एक अजब सपेना
बिचने सा नया गया

यह भी यी आँगा की वह
किन्तु
महल रही आज बड़ी दूर मे
आज गविया गुच्छे वह होंगे
पुरे हुए—
बन्दा से, आँवू से, ओम से, कपूर से !

ढीठ चॉदनी

आजफ़ल तमाम रात
चॉदनी जगाती है

मुँह पर दे दे छाटे
अधतुन्ने झरोखे से
अन्दर आ जाती है
दने पाँव धोखे से

माथा छू
निद्रिया उचगती है
घाहर ले जाती है
घण्टों बनियाती है
ठण्डी ठण्डी छत पर
लिपट लिपट जाती है
बिहल मदमाती है
बागिया बिना बात !

आनरुल तमाम रात
चौंदी जगाती है ।

दिन ढले की वारिश

वारिश दिन ढले की
हरियाली—भीगी, बेबम, गुमसुम
तुम हो

और,
और वही बल्लवाई मुद्रा
कोमल शय्य वाले गले की
वही झुकी मुठी पलक सीपी में ग्वाता हुआ पठाइ
बेज्ञान समन्दर

अन्दर

एक टूटा जलिया

थकी राहों से पूरता है पता

दूर—पीछे छूटे प्रयालदीप का

बाधगा नहा

मिर्क कापती उँगलियों से छू लूँ तुम्हे

जाने कौन राहें ले आई हैं

जाने कौन राहें चापम बहा ले जायेगी

मेरी इस रतीली बेला पर

एक और छाप छूट जायेगी

आने की, रुकने की, चलने की

इस उदास नारिश की

पाम पास चुप बैठे

गुमगुम त्रि दलने की ।

शाम, एक थकी लडकी

नाद भरी, तरलायित, उडरी, फटाफटार आँख मूँट
शाम—

एक नफर म थकी हुई लडकी मी
आई और मेरे पास बैठ गई

घेटी रती गुमगुम भीमे
से उठी,
और तमे हुए अग दीन
उनर गयी
गुनगुती धूप की नगी मे

मावना सन्तोता जिम्ना
तुछ धाण लहरा के तिलकोरा पर
नोपा
फिर घुलने लगा—
घुलने लगा पानी की लपटा में
तीली मोमवत्ती मा !

ओ जल-मिम्ना !
ओ लहर विह्वल !
अपने को थामो, मम्तालो—

मै हूँ नगी तल की रेत ।
अर्पित हूँ,
लेकिा किमी भी धाण पाँरो तरे से
बह जाऊँगा

अन्तहीन यात्रा

त्रिदा देती एक टुबली घोंट सी
यह मेड
अधरे में टूटते चुपचाप
बूढ़े पेड़

सम होने को न आयेगी कभी क्या
एक उनही माग भी यह धूल धूसर रात ?
एक दिन क्या सुझी को पी जायेगी
यह नगर की प्यास, अबुस, अधार ?

क्या यही मन साथ मेरे जायेंगे
उपते ब्रम्ब, पुराने पुर ?
पाँच मे लिपटी हुई यह धनुष-गो दुहरी नती
सोथ देगी क्या मुग मिलकुन ?

०

एक छवि

दिन में धूप
छाँह दिन ओझल,
पल पल चचल---
गोरी दुपली, बेला उनली, जैमे मदली कपूर की

तुमुफा हठीली,
हरी पर्व में
हल्की भीली
पाग लपटे—एक कली कचनार की

रमिया पना में
झोके ली पार की
सहर—पना में

जिगो आफ
कर नी हूँ
घरि और उजागर
मेरे छोटे फूलमे घर, धूपबुली छत, घाटलिपी कीपार की !

चैत का एक दिन

सूरज में नहाये हुए
नीले कमल-सा यह चैत का नगीला तिन
मैंने निताया नहा
केवल गुज़ार दिया

६

बेबुध तुम्हारे पाग बैठे हुए
रन्गी तुम्हारी मुक्त रेणी को
अँगुली में बार-बार प्यार से लिपटा कर
आवागे छोड़ दिया

निद्रियारी ओम्हां से
बार बार देखने की कोशिश की—
देखा नहीं,
चौं लटी नाज़ुक टहनी सी हम देह की
हल्की गरमाई को फेरल महसूस किया,
जाना नहीं

शाम हुई
केवल तुम्हारी रूपगन्ध से पगा भा
ट्ट ट्ट रह रह अलमाने लगा
भैने कुछ नहीं किया
धीर्म से तुम्हारे माथे पर झुके
रन्गे हठीले एक मुन्तल को
होठों से सँवार दिया

सुनो
सच बतलाता
वया तुमको कभी भी
किमी ने भी
इतना उजला, कोमल, पारदर्शी प्यार दिया ?

फूल, सागर, सीपी

[तुम्हारे हाथों में लाल फूलों का एक
गुच्छ देस कर]

फूल

का अधखिला अन्तस्

एक रगीन लहराता अतृप्त सागर है—

तुम्हारी मुलायम अँगुलियों के तटों से

वेवस सा टकरा कर बार बार अपने म

वापस लौट आता है

कुठ भोगी मणियाँ
 लुप्त जौं नू ना नारा पा
 निमी तिर्मना जखरी का लज्जाभीत कम्पा
 नियति के दुःखों ना
 छूट छूट जाता है
 मुट्टी में तुहारी

पारी,
 हरी, रतारी मीषी मे
 दो पत्ते होठ
 आतुर हिनको म रह रह कर सँपते है

क्या यह उमड़ता, अमयान्तित, व्याकुल ज्वार
 डा पत्ते होठों में नैथ कर
 मिमट जायेगा
 म्वाती की केवल एक पूँट सा-परुने को-
 पीड़ा म गहरे हृदय कर मोती रचने को-
 मय रुठ डट जाने पर भी अट्टट बचने को-

कोमल तुम्हारी अँगुलियों म
 मिम्ने को आतुर
 एक नैधा फूल मागर का !

० दूसरे दिन सुबह

शेष है अन भी हवाओं में
एक हल्की लहर लेती महक
उस खिलते गुलाबी जिस्म की
प्यार से नीले पड़े रतनार होठों की खनक
पत्तियों में शेष है अब भी

जमी तक उलझा हुआ है
सौन की हर गुलक में
वा लहर पर लहर लेना रूप
मृदुल युद्ध उध गुगुने मे देन के स्वयं से
अब भी पुर्न है सुवद की चारीफ कच्ची धूप ।

वा तुम्हें पाने १ पाते की अजन सी टीम
रीती नहीं—रीती नहीं
शाम में शुर्नी हुई वा पूल भी दुपहर
बीन फर भी अभी बीती नहीं--बीती नहीं

अजुरी भर घूप

अजुरी भर घूप सा
मुझे पी लो !

कण कण
मुझे जी लो !

जितना हुआ है आज तक मे कितनी का भी—

धातु नहाई पाटियों का,
पगउट्टी का,
अम्माई नामों का,
जिन्हें नहा लेना कभी उन भूल नामों का,

जिनकी बहुत खचनी मे पुछाग है
जिनके आगे मेरा मारा अहम हारा है,
गजरे भी बोहो का
रग रने फूले का,
नौराये सागर के ज्वार बुले कूला का,
हग्याली छतों का,
अपने घर जाने वाली प्यारी राहों का—

जितना इत पमसा है
उत्ता उल मिला कर भी बोड़ा पड़ेगा
मे कितना तुम्हारा है

जी लो
मुझे कण कण
अजुरी भर
पी लो !

० घाटी का बादल

जाने कब, किस गुहानीड से उडकर गुपचुप
मेघधूम का योजन विम्बृत पक्षी सहसा
प्रगट हो गया घाटी सुदूर छोर पर
गहरे भूरे, मीले लम्बे टैने खोले

प्रातःपुष की ज़रतारी ओढ़ती लपटे
 अर्भी अभी जागी
 सुमार से भरी
 निनात जुमारी घाटी
 इस कामातुर मेघधूम के
 औचक आन्गिग म पिस कर
 रतिश्रान्ता सौ मलिन हो गई ।

थका हुआ चाल
 पश्चिम के श्याम त्रिगवृत शिखर पर
 शीतल कपोल धर
 क्षण भर गहरी पीठ सौ गया ,

धीरे धीरे

मून्डित घाटी म जैसे फुल ससिं लौटा
 अलस झकोरे, देवदार में, चीड़कुज म
 गंध लदे-मादक भीगे से

मेघधूम ने करवट ली—

अँगड़ाई मे ज्यो

सौ सौ गहरे भूरे डैने आगे पसरे,

उडे,

राड़े परंत शिखरो से टफ़रा कर

मड़राये

मुडे—

कटानो मे

दरों म भटके

फिर ढालो पर धीमे धीमे हॉफ हॉफ कर चढ़ने लगे
बटोही जैसे !

जहाँ अभी घाटी थी लहरधारियों वाली
हरे खेत थे

लाल छतो वाले छोटे पर्वती गाँव ये
वहाँ नहा है कुछ भी अब

वह जादू था

वह इन्द्रजाल था

लुप्त हो गया !

सच है केवल मेघधूम यह

ढालो से टकराते क्षीर महासागर सा

फँक रहा है उजला फेना

लाल छतो वाले छोटे पर्वती गाँव

या हरे खेत

या लहरधारियों वाली घाटी

ये थे केवल मूगा मडली सीप सिपारें

जो धाराओ की उछाल म ऊपर आयेँ

कुछ क्षण ऊपर तैरे फिर जलमग्न हो गये !

नीचे मेघधूम का सूना सूना सागर

ऊपर केवल नभ

गुमसुम सा, उदासीन सा

और बीच में निराधार सा त्रिा नीचे का पूरा पर्यंत !

कैसे अचल खड़ा है

क्या यह भी जादू है ?

दालों पर चुपचाप मड़े ह
 बाँसों के दितरे दितरे वन ।
 उल्टी हुई पुतलियाँ जैसे
 बाँसों के नोकीरे पत्ते
 उल्टे ओं फिर
 टपेन हो गये ।

नीचे के फटक झाड़ों में अटक अटक कर
 ऊपर चढ़ता जाता है अनगर सा बालक
 तने, टांगिया, पत्त पल्ले भूरे पड़ते,
 लगना जैसे पीछे हटते
 धीरे धीरे पुँछी लकीरों में मिट जाते ।

कुछ भी नहीं रहा
 उत्तुग शिखरमाला वाला गरमोला परंत
 रगा के कच्चे धाँसे सा धुला, रह गया—
 घाटी, गाँव, चैन, वन, झरने
 मरुत मरुटि ज्या धुँआ धुँआ अणुओं में
 विश्रुवन् विभक्त हो मिग्न गई है ।

शप बचा हूँ कबल में
 या मेरे चारों ओर दूर तक फैग हुआ सफ़्त अँधेरा

बानी मय रुद्ध नष्ट हो गया
 गाँव, जहाँ पर मेरा घर था
 पगटण्टी, जिन पर चल मैं शिखरों तक पहुँचा
 जङ्गल, जिमम बड़ी मॉझ तक भटका खोया
 झरने, जिनमें थके धूल से सने पाँव धो ।
 धरुन मिगई,

सन कुद्य-सन कुद्य-नष्ट हो गया

शेष बचा हूँ मैं

या मुझको घेरे उजली धूम्र-शून्यता ।

धीरे धीरे हार रहा हूँ,

इस ऊँचाई पर चढ़कर ही

जान सका हूँ—हम सब

क्या है ?

सिर्फ,

बहुत ऊँचे पहाड पर चढ़ते बौने ।

बौना—जिमको केवल दो पग दीख रहा है

दो पग आगे

दो पग पीछे

दो पग ऊपर

दो पग नीचे

दो पग की ही केवल जिसकी ज्ञान-परिधि है !

कहाँ पड़ेगा गलन कदम

औं' मीले लम्बी घाटी मुझको खा जायेगी !

यह अथाह शून्यता

टरा मै

हाथो से टटोल कर किसको खोज रहा हूँ

यह है पत्थर, ये है जडे

किन्तु यह क्या है ?

अंधियारे में नरम परस सा

निसका हाथ छू गया मुझको ?

"मैं हूँ एक दूसरा बौना
 पगडण्डी में जरा अलग हट
 माथे नुन्हारे मैं चल्ना आया हूँ अब तरु ।
 हारो मत, साहस मत छोड़ो
 मैं भी हूँ बौना, बामा हूँ
 किन्तु तीन पग गॉगे हँ भैने धरती से
 दो पग तुमको दीस रहा हूँ
 उमे पार कर चढ़ो
 तीगग पग तो मुझमें सार्थक होगा
 मुन पर छोड़ो,

हर मनुष्य बौना है लेकिन
 मैं बौना में बौना ही चारु रहता हूँ
 हारो मत, साहस मत छोड़ो
 इसमें भी अथाह शून्य में
 बौना ने ही तीन पगा ग धरती नापी ।"

पनना पड़ते लगा
 दृष्टिगोधी वह परदा
 सहसा मुग्ध हो उठी वह तिग्मन्द शून्यता

नीसे गही,
 मगर चीड़ो ने सन सन कर मदमाती गंधों वाले
 पवन सदेसे भेजे
 शुरमुट में सहमी चिड़ियो ने
 दने कण्ठ से मुझे पुकारा
 दूर कहीं मुन पड़ा पहाड़ी गाने का म्बर ।

थोड़ा सा पिघ्राम लौट कर आया मुझमें
 दीग्य नहा पड़ते हैं
 पर इस गहन कुहा में
 जिनने ही जगती रास्ते आते जाते
 पथिकों से अब भी सजीव है
 अपराजित है जिनमें चलने की आकांक्षा ।
 दीग्य नहा पड़ता है सूरज
 पर दो शिखरों बीच झर रही
 त्रिव्य ज्योति सी धूप धुईली ।

नदियों नीचे चमक उठीं रूपाडोरी सी
 और दूधिया शीशे में से
 झलक उठे है वृक्ष गङ्गा के, पुल लोहे के,

धीरे धीरे परतें ऋतुने लगा धूम की
 यहाँ वहाँ पर
 पिघले सोने के पानी सी
 धूप टपकने लगी
 गाँव खिल गये फूल से

बादल जैसे आया वैसे लौट गया है

केवल कुछ बादल के पीछे छूटे टुकड़े
घायादार झाड़ियों में विश्राम कर रहे
जैसे धीरी उचली गायें

एक अकेला चञ्चल बादल
चौकी के हिम्मेत सा घाटी में चरता है ।

